





कला की सभी शाखाएँ अपनी बाह्य परिधियों में एक दूसरी से घुली-मिली और अन्तर्स्पन्दित होने के बावजूद हर कला, जैसे जैसे वह अपने केन्द्रीय गुणवाकर्षण बिन्दु की तरफ बढ़ती जाती है, अपना एक विशिष्ट और घेराबन्द संसार बनाती है जहाँ सिर्फ उसी का वर्चस्व होता है, और यह क्षेत्र उस कला का सबसे अधिक मामिक, सबसे अधिक अनिवार्य क्षेत्र होता है। सो रजा के कैनवासों में भी वह क्षेत्र, जहाँ सबसे अधिक ऊर्जा विकीरित हो रही होती है, जहाँ रंग अपने तनाव और अपनी क्षमता के सबसे ऊँचे बिन्दु पर पहुँचे हुए हैं, अनिवार्यतः चित्रकला का ही क्षेत्र है, जिसकी कोई सटीक या शाब्दिक परिभाषा संभव नहीं। यहाँ वे कलाकृतियाँ पूर्णतया चाक्षुष हैं और यही होना भी चाहिए। वह कलाकृति जिसे हम अन्य किसी कला माध्यम के प्रयोग से कविता या संगीत या नृत्य के रूप में पूरमपूर उतार कर रख देने का दावा कर सकें, हमेशा दोषम दर्जे की ही होगी। इसी से भोपाल में अपने उत्सुक दर्शकों को रजा की यही नेक, पर सपाट सलाह थी कि वे कुछ पृष्ठों या कैटलागों को पढ़ने की बजाय उनके चित्रों के सामने जा खड़े हों और उन्हें खूब गौर से खूब देर तक देखें। और वे पायेंगे कि अचानक उन फलकों पर कुछ घटने लगा है।

हम इसे मानें या न मानें, चित्रकला के सारे बिम्ब और रंगाकार, और चाहे जो कुछ भी हो, सबसे पहले, और सबसे ऊपर भौतिक चाक्षुष उपस्थितियाँ हैं, जैसा कि मौन्द्रिण्डे के “द ट्री” सीरीज के हृदय को हिला देने वाले चित्र दर्शाते हैं, अमूर्तन एक उतनी ही सघन, सुनियोजित और क्रमबद्ध जैविक प्रक्रिया है, जितना कि किसी प्राकृतिक इकाई का क्रमशः उद्भव और विकास। इसी से कला में अमूर्त वक्तव्य देने का हक उसी कलाकार को है जिसके भीतर एक गहरे धीरज, तटस्थता और गूढ़ जीवनदर्शन के उत्पाद से तप कर एक सहज प्रक्रिया द्वारा मूर्त स्वयमेव अमूर्त रूप लेता गया हो। कला की इस लम्बी, कष्टसाध्य प्रक्रिया में कोई शॉर्टकट नहीं। इसी से ‘बेसिक डिजाइन’ के कोसों का इस्तहार करने वाले तथाकथित आर्ट स्कूल और ऑप, पॉप तथा साइकेडेलिक रंगों के वायवीय चमत्कारों से पटी पड़ी गैलरियाँ सामान्य जन की कलात्मक समझ के लिए एक ऐसा गंभीर खतरा हैं, जो कला को उसकी अनिवार्य सार्वभौम पृष्ठभूमि के बगैर एक नितांत निजी विधा के रूप में सहजगम्य, सहजसाध्य और उपभोग्य जिन्स बना कर प्रस्तुत करता है। कला के पारम्परिक बोध और माध्यमगत अनुशासन से कतरा कर कलाकार कला की सम्प्रेषणीयता का मूल स्वयं काट डालता है, यह बात दकियानुसी लगते हुए भी सच है। रंगों के बीहड़ वजूद पर एक सुनियोजित और निरंतर पकड़ के कारण ही रजा के चित्र रंगों की पारंपरिक याद भर दर्शक के भीतर नहीं जगाते, वे उनकी चरम संभावनाओं को भी एक (दीखने में) सरल और सहज परिणति के रूप में उनके सामने ला पाये हैं। यहीं पर देखा जाय तो साइकेडेलिक रंगाकारों का अमूर्त मर्म, वास्तविक रंगों के अमूर्तन की तुलना में खुलता है। रजा के चित्रों के जो रंगाकार हैं, वे अपने मूल रूपों में कलाकार के भीतर भी चाक्षुष बिम्बों के रूप में सतत विद्यमान हैं, इसी से जब वे उनका प्रयोग कर रहे होते हैं तो उन पर वे अपनी कलाधारणाओं का अनुशासन पूरी तरह से लागू कर पाते हैं और फलस्वरूप इन मर्मस्पर्शी रंगफलकों का जन्म होता है। जबकि एक साइकेडेलिक रंगों का इस्तमाल कर रहा कलाकार उन रंगों को अपने भीतर खोजे से भी नहीं पा सकता, क्योंकि उनका अंतिम रूप तकनीकी उपकरणों से सिरजा जाता है और सिर्फ तभी सामने आता है जब वे बन चुके होते हैं। जिन रंगों को कलाकार अपने भीतर ही नहीं देख पा रहा उन्हें वह क्या खाक अपनी इच्छानुसार नियोजित कर पायेगा? कुछ देर को रंगों के चामत्कारिक डिजाइनों के इन्द्रजाल से वह कलाकार दर्शकों को रिझा भले ही ले। ऐसे चित्र कभी कोई गहरी और असे तक रहने वाली छाप दिल पर नहीं छोड़ते। इसके ठीक विपरीत, रजा के रंगाकार कलाकार की भीतरी कसीटी पर पूरी तरह से परखे हुए हैं, और इसी से वे कलाकार के रूप में उन्हें इतने आत्मविश्वास से सँजो पाये हैं कि वे कुम्भैत घोड़ों की तरह अपनी व्यक्तिगत ऊर्जा को बरकरार रखते हुए भी चित्र के कलागत अनुशासन में सध जायें। रजा के चित्र रंगों की बीहड़ ऊर्जा को संकुचित कर उनकी एक चपटे डिजाइन के रूप में चामत्कारिक परेड नहीं करते, रजा की रचि तो रंगाकारों की ऊर्जा को व्यवस्थित करने में है जिससे वे अन्ततः दर्शक की रचि भी व्यवस्थित कर पाते हैं, और यही कला के लिए काम्य भी है।

सामान्य जीवन के ठीक विपरीत, कला के क्षेत्र में, जो कुछ बाहर घट रहा है जीवन में उसे सच्ची तरह देख और अभिव्यक्त कर पाने की ताकत, बाहरी सैलाब में कूद पड़ने से नहीं, उससे पलटकर भीतर, बहुत भीतर, मुड़ कर अपनी सच्ची कलात्मक अवधारणाओं और मान्यताओं से जुड़ने से ही आती है। रजा के चित्रों में यही अन्तरुन्मुखी तलाश है, जो कलाकार की कलात्मक परिपक्वता के साथ-साथ उसके और-और भीतर उतरती चली गयी है, आभरणों, अलंकरणों की भटकनभरी चौंध से दूर, रंगों के मूल सत्य की तलाश में। और इसका सुन्दरतम उदाहरण है उनका कैनवास ‘अतल शून्य की अनन्तता’। यह सैरा सच्चे अर्थों में ‘दृश्यचित्र’ है, जहाँ एक उत्कट चिंतन और ध्यान की लौ से तप कर रंग लगातार ऐसे इकहरे होते चले गये हैं कि अंततः रंगों की पारम्परिक चेतना और कलाकार की निजी अवधारणाएँ एकाकार होकर एक थिराए हुए सपाटपने और मूल आकारों का भव्य सामंजस्य बन गई हैं। यहाँ केवल विशुद्ध रंगाकार हैं, और उनके सुनियोजन से एक ऐसी प्रागैतिहासिक शान्ति का निर्माण हुआ है जिसमें

सतह की स्थिरता के बावजूद कला की निहित गहनता का गूढ़ आभास दर्शक को बराबर मिलता रहता है। बतौर रूपक इस फलक को हम एक ऐसे घूमते चक्र की संज्ञा दे सकते हैं जिसके चारों तरफ कोई पृष्ठभूमि नहीं, कोई अग्रभूमि नहीं, सिर्फ वह स्वयं है अनहद नाद की तरह निरंतर और स्वयंभू, अपनी विशिष्ट स्थिरता में आंदोलित हो कर उस आंदोलन से पुनः अपने स्थिर केन्द्र में लौटता हुआ। हमारे आचार्यों ने जो कहा है कि समस्त रसों में शांत रस की अवतारणा ही कला में सबसे कठिन काम है, इस कैनवास की भव्य और प्रौढ़ उपस्थिति से एक बार फिर प्रमाणित होता है।

इस बिन्दु से रज़ा की कला किस ओर मुड़ेगी यह जानने की हम बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे।